2

हम पहली के बच्चे हैं ...

उषा शर्मा*

एक सरकारी स्कूल की कक्षा एक में मेरा पहला दिन, मेरे शैक्षिक जीवन का बेहद 'ज्ञानवान' दिन था। अभी हाल ही में एन.सी.ई.आर.टी. के संकाय सदस्यों को तीन-तीन महीने के लिए स्कूल में पढ़ाने के लिए कहा गया। मेरे लिए यह एक 'लपकने' वाला अवसर था और मुझे पूर्ण विश्वास था कि लगभग 21 वर्षों के बाद एक बार फ़िर स्कूल और उसमें भी कक्षा एक को पढ़ाने का अनुभव मुझे बहुत कुछ देने वाला और मेरी तमाम संवदेनाओं को स्पंदित करने वाला होगा। शिक्षा का अधिकार लागू होने के 'असर' मुझे उस सरकारी स्कूल की कक्षा एक में भी देखने को मिले। जब मैंने कक्षा एक में प्रवेश किया तो सारे बच्चे ब्लैकबोर्ड से देखकर अपनी-अपनी कॉपी में कुछ-कुछ लिख रहे थे।

बोर्ड पर खिंची लाइनों के बीच में अंग्रेज़ी के अक्षर लिखने की कोशिश में 'जुटे' पड़े थे। एक बच्ची परी तो बार-बार एक अक्षर बनाती और पसीना साफ़ करती। कभी बाज़ु से ही नाक साफ़ करती। वह खड़े होकर ही लिख रही थी। तब भी डेस्क के बराबर बामुश्किल ही आती थी। अंग्रेज़ी के 'सी' की आकृति कभी 'ई' का रूप धारण करती तो कभी 'एल' की आकृति का रूप धारण करती। कोई अक्षर बड़ा बन जाता तो कोई अक्षर बहुत छोटा! बेहद कठिन काम! फ़िर भी उन्होंने हार नहीं मानी और वे अंग्रेज़ी के अक्षर लिखने में मसरूफ़ थे।

उन्होंने मेरी तरफ गौर से देखा भी नहीं! उन्हें लगा कि कोई आया होगा अपने बच्चे का दाखिला करवाने! मेरे साथ कक्षा चार की साक्षी भी थी जिसके व्यवहार के सामने उसकी शिक्षिका ने हथियार डाल दिए थे। वह स्कूल से भाग जाती थी। उसकी माँ को बुलाया गया और कटघरे में मुलज़िम की मानिंद खड़ा कर दिया और साक्षी के बारे में जो 'निंदा पुराण' शुरू हुआ। उससे एक माँ का तड़पना स्वाभाविक था और गाज़ गिरी साक्षी के ऊपर। 'चटाक' की आवाज़ आई – माँ ने साक्षी को एक ज़ोरदार चाँटा जड़ दिया, बिना पूरी बात सुने, समझे और सच्चाई को जाने। माँ के साथ साक्षी की चार साल की छोटी बहन गायत्री भी आई थी।

मेरा पूरा ध्यान अब गायत्री पर था। यह दृश्य देखकर तो उसके स्कूल न आने की नींव पड़ी ही समझो। साक्षी हर बार अपनी सफ़ाई देती रही, लेकिन किसी ने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया। लिहाज़ा मैंने उसे अपनी कक्षा में ले जाने के लिए 'बड़ी मैडम' से अनुमति माँगी। साक्षी को अपनी

* *एसोसिएट प्रोफ़ेसर*, एन. सी. ई. आर. टी., नयी दिल्ली - 110016

चौथी कक्षा में से बस्ता लेकर आने के लिए कहा। तब तक मैं कक्षा का 'शिक्षाशास्त्र' समझने की कोशिश कर रही थी। नीचे यानी प्राचार्य के कक्ष में मुझे 'बाल मनोविज्ञान और समाजशास्त्र' को इतनी नज़दीक से देखने-समझने का अवसर मिला। साक्षी हमारी कक्षा में बैठेगी-यह उद्घोषणा मैंने उसकी अनुपस्थिति में ही कर दी थी। इसलिए कक्षा एक के बच्चों ने साक्षी को बिना किसी हीलहुज्जत के अपनी कक्षा में 'स्थान' दे दिया।

जब बच्चों ने काम पूरा कर लिया तो मेरी 'बारी' आई। मैंने कहा, ''सारे बच्चे किताब बंद कर दीजिए। आज हम सिर्फ़ बात करेंगे।'' बच्चों के साथ बातचीत का सिलसिला शुरू हुआ। वे अपने घर के बारे में, परिवार के सदस्यों के बारे में, अपने दोस्तों के बारे में, एकदम पक्की सहेली के बारे में बताने लगे। फिर एक आवाज़ आई – आप भी तो अपने बारे में बताओ। हमसे ही पूछते जाओगे क्या? यह लक्ष्मी की आवाज़ थी। बात तो सही थी। फ़िर मैंने अपने बारे में, अपने परिवार के बारे में बताया। हिसाब बराबर समझो! लेकिन साक्षी ने एक शब्द भी नहीं कहा और इस पर मैंने ज़्यादा ज़ोर भी नहीं दिया।

अब मैंने सभी को अपने-अपने परिवार की तस्वीर बनाने के लिए कहा। ज्योति ने बहुत विस्तार से परिवार बनाया, जिसमें वह अपनी बहन की पीठ पर चढ़ी हुई है। सब तरफ़ रंग ही रंग थे। साक्षी ने भी पाँच चेहरे बनाए लेकिन काले रंग से। उसके बनाए सारे चेहरे उदास और मुँह लटकाए हुए थे। मैंने बारी-बारी से उनका नाम पूछा और उन चेहरों के नीचे लिख दिया। साक्षी के चेहरे समेत परिवार में भी 'खुशी' का एलीमेंट नदारद है – यह उसकी बनाई तस्वीरों से साफ़ झलक रहा था। वह तस्वीर मुझे लगातार परेशान कर रही थी। कहाँ गई साक्षी की खुशी? शायद उसके मन को जानने-समझने वाला कोई नहीं था। ऐसा कोई नहीं था जिससे इस सवाल का जवाब मिल सके। कक्षा के बच्चों के मन को जानना-समझना उन्हें पढ़ाने से ज़्यादा ज़रूरी है और यह उन्हें पढ़ाने में मदद करता है। यह बात शिक्षकों को समझनी होगी। जो किताब उनके पाठ्यक्रम में है, उसे पढ़ना तब और भी आसान होगा, उन बच्चों की जिंदगी की किताब को पढ़ने की 'फुर्सत, हूनर और शहुर' भी जरूरी है, क्योंकि हर एक कक्षा के लिहाज़ से यह बेहद महत्वपूर्ण है।

एक शिक्षक के रूप में मेरे पेशेवर जीवन की शुरुआत भी कक्षा एक को पढ़ाने के साथ हुई थी। जिसमें कक्षा एक को भी पढ़ाती थी और कक्षा दस को भी। पढ़ाने के लिहाज़ से दोनों कक्षाओं के बीच में किसी को कोई तालमेल नज़र नहीं आ रहा था। लेकिन मुझे लग रहा था कि कक्षा एक के बच्चों को पढ़ाते हुए मुझे जो 'असल शिक्षाशास्त्र' सीखने को मिलेगा उसका अनुप्रयोग कक्षा दस के बच्चों के लिए उपयोगी होगा। हम मानें या ना मानें बच्चे हमें बहुत कुछ सिखाते हैं। पहली कक्षा जो प्राथमिक शिक्षा का संभवत: पहला पायदान है। (संभवत: पहला इसलिए कि अमूमन सरकारी स्कूलों में स्कूल पहली कक्षा से ही शुरू होता है।)-वह बेहद महत्वपूर्ण है। महत्वपूर्ण इसलिए भी है कि यहीं से शैक्षिक जीवन की नींव पड़ती है और इसलिए भी है कि यह दौर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से हमारे जीवन को गहनता से प्रभावित करता है। मुझे अपने जीवन की कक्षा एक की वह

Prathmik Shikshak Jan 2015.indd 11 28-12-2015 AM 11:56:45

घटना आज भी याद है जब हिंदी की किताब 'रानी मदन अमर न होने पर मेरी शिक्षिका ने मुझे और मेरी बहन को धक्का देकर कक्षा से बाहर गिरा दिया था। वह चोट जो उस दिन मेरे घुटने लगी पर थी, आज भी मेरे मन पर मौजूद है- भुलाए नहीं भूलती। न ही मुझे सरकारी स्कूल की उस शिक्षिका की आकृति भूलती है- झुर्रीदार चेहरा,सफेद सूट और पके बाल। आखिर भूले भी क्यों? शायद यही मेरी संवेदनाओं को मृत नहीं होने देती। किसी भी बच्चे के जीवन में ऐसा वाकया बहुत सारे सवाल खड़े करता है कि अंतत: हम बच्चों के प्रति इतने क्रूर क्यों हैं? शरीर पर लगी चोट तो नज़र आती है लेकिन मन पर लगी चोट किसी को क्यों नज़र नही आती?

शिक्षक यह क्यों भूल जाते हैं कि बच्चे भी उनकी तरह ही संवेदनशील होते हैं। उन्हें भी किसी के व्यवहार से ठेस पहुँच सकती है। उस दिन मेरे मन में कोई सवाल भले ही न हो लेकिन आज भी वह घटना जब-तब मेरे अवचेतन से चेतन स्तर तक आती है तो मन के भीतर कहीं कुछ दुखता है। आर्थिक कारणों से सरकारी स्कूल में पढ़ने की 'विवशता' और शिक्षिकाओं के व्यवहार को 'नियति' मान लेने के कारण मन ने उस समय किसी प्रकार का विरोध नहीं किया। लगभग सत्रह वर्ष के बाद जब स्वयं शिक्षक के रूप में अपने पेशेवर जीवन की शुरुआत की तो विद्यालयी जीवन के उन तमाम अनुभवों ने मुझे सदैव सही रास्ता दिखाया कि बच्चों के साथ किस तरह पेश आना चाहिए। किस तरह एक तहज़ीब भरा व्यवहार बच्चों के मन पर अधिकार प्राप्त करने में हमारा मार्ग प्रशस्त करता है।

कक्षा एक में आने से पहले ही बच्चों के पास अपने आप-पास की दुनिया के बारे में अनेक अवधारणाएँ होती है। वे चीजों की जटिलता को भी अनेक बार समझ लेते हैं वह भी सलीके से, जब स्वयं उनका जीवन बेहद जटिल हो। माँ या तो दूसरों के घरों में काम करती हैं, सिलाई करती हैं, मज़दूरी करती हैं और पिता या तो ठेला लगाते हैं, मज़दूरी करते हैं, रिक्शा चलाते हैं आदि। कई बार स्थिति और भी भयावह हो जाती है, जब पिता शराब पीकर आते हैं और घर में हिंसा का वातावरण पैदा हो जाता है। ऐसे में एक छोटे से बच्चे के मन पर क्या गुज़रती होगी? वह किससे क्या कहता होगा और कैसे कहता होगा? उसका नन्हा सा मन रोज़ सहमता होगा और हम स्कूल आते ही 'आओ किताब पढ़ें' के अंदाज में काम करना शुरू कर देते हैं, ऐसा नहीं है कि हर बच्चे के साथ यह दुखद स्थिति होती है, लेकिन होती तो है।

'एवरी चॉइल्ड मैटर्स' यही तो नारा है शिक्षा के अधिकार का लेकिन फिर क्यों हम हमेशा आँकड़ों में उलझे-उलझाते रहते हैं? स्कूल वह स्थान होना चाहिए जहाँ बच्चे अपने मन की बातों को साझा कर सकें और उनकी बातों को बेहद गोपनीय रखा जा सके। स्कूल को तो आनंद की शाला होना चाहिए जहाँ रंग हैं, कला है, सुर हैं, ताल है,और प्रकृति का हर तत्त्व मौजूद है। चाँद-तारों से लेकर सागर और लहरों की बातें होती हैं। चींटी से लेकर पड़ोस के चंदू की बातें होती हैं। दादी की साड़ी से लेकर नानी की कहानी की बातें होती हैं और सभी अवधारणाएँ बुनने और गुनने में काम में आती हैं। आप मानें या ना मानें, लेकिन हम तो किताब ही पढ़ाएँगे जनाब। 'जीवन की किताब

Prathmik Shikshak Jan 2015.indd 12 28-12-2015 AM 11:56:45

को पढ़े बगैर केवल स्कूल की किताब पढ़ना कितना बेमानी लगता है' यह पहली कक्षा के बच्चे के जीवन में झाँकने पर ही पता चलेगा। अंतत: शिक्षा का अर्थ क्या है? जीवन जीने की तैयारी या बेहतर जीवन जीना? कोई भी हो, लेकिन शिक्षा का उद्देश्य जीवन के उद्देश्य से अलग हो ही नहीं सकता।

आइए, एक और घटना से इसे समझते हैं- पहली कक्षा की इकरा अकसर अपना टिफ़िन मुझसे खुलवाती थी। उसने हर दिन की तरह मुझसे टिफ़िन खोलने के लिए कहा। तो लक्ष्मी तपाक से बोली, ''मैडम क्या तुम्हारी नौकर लगी है?'' मैंने लक्ष्मी को ऐसा कहने के लिए मना किया।

मैंने पूछा, ''तो क्या हो गया, और यह नौकर क्या होता है ?''

लक्ष्मी ने मेरे प्रश्न का जवाब देते हुए कहा, ''जो दूसरों का काम करता है। ''

लक्ष्मी को समझाते हुए आगे मैंने कहा, ''दूसरों का काम करना गलत बात तो नहीं। हमें दूसरों की मदद करनी चाहिए। जैसे आप सभी बच्चे इस रीडिंग कॉर्नर पर किताबें रखने, उन्हें रस्सी पर टाँगने और फिर अलमारी में रखने में मेरी कितनी मदद करते हैं, तो क्या यह गलत बात है ?''

मेरी बात सुनने के बाद लक्ष्मी सहित बच्चे अपना-अपना तर्क देने लगे कि उनके द्वारा मेरे लिए काम करना कितना सही है और मेरे द्वारा उनका काम करना कितना गलत है । लेकिन मेरे पास 'नौकर ' की सफ़ाई में कोई तर्क शेष नहीं था । इस स्कूल की अधिकांश माताएँ दूसरों के घरों में काम करती हैं, जिसे स्वयं बच्चे ही हेय दृष्टि से देखते हैं और काम करने को नकारात्मक मानते हैं। किसने दिया काम करने को यह भाव , यह अर्थ ? बच्चों द्वारा इस्तेमाल किए गए शब्द इस ओर साफ़ इशारा करते हैं कि किस प्रकार समाज का माहौल उनकी अवधारणाओं को 'बनाता' और 'बिगाड़ता' है । 'नौकर' शब्द भी इसी की देन है। आपसी बातचीत से यह मामला सुलट सकता है, लेकिन इसके लिए 'फ़ुर्सत' हुनर और शहुर चाहिए ।

अनेक बार ऐसा भी होता है कि जो आपको किसी कक्षा में पढ़ना सीखना है उसकी पूरी तैयारी उससे निचली कक्षा में हो जानी चाहिए । जैसे कक्षा एक की पूरी तैयारी नर्सरी , के.जी. में हो जानी चाहिए। लेकिन सवाल उठता है कि जब कक्षा की सारी पढ़ाई –लिखाई उससे निचली कक्षा में ही कर लेंगे तो कक्षा एक में क्या करेंगे ? कक्षा दो की तैयारी ! यह ' शिक्षाशास्त्रीय समझ ' तो मेरी समझ से एकदम परे है। शिक्षक अकसर यह शिकायत करते पाए जाएँगे कि इन बच्चों को तो कुछ आता ही नहीं है । अरे भाई! अगर इन्हें सब कुछ आता तो स्कूल ही क्यों आते? कोई इनसे पूछे तो सही ! बच्चे स्कूल में आने से पहले ही बहुत कुछ सीखकर आते हैं और बहुत कुछ सीखने के लिए आते हैं । लेकिन यह सीखना केवल पाठ्य-पुस्तक तक ही सीमित नहीं है ।

पाठ्य-पुस्तक तो साधन है साध्य नहीं ! यह बात भी शिक्षकों को समझनी होगी और शिक्षा व्यवस्था से जुड़े हर व्यक्ति को जो प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा व्यवस्था को प्रभावित करते हैं – सकारात्क और नकारात्मक – दोनों रूपों से ! पहली कक्षा का एक और वाकया है जो हमारी शुरुआती पढ़ने-लिखने के बारे में जो प्रचलित संकीर्ण सोच , व्यवहार को उजागर

Prathmik Shikshak Jan 2015.indd 13 28-12-2015 AM 11:56:45

करता है। मैंने दूसरे दिन बच्चों से कहा कि अपनी हिंदी की किताब निकालिए। 'आ' से अनार वाली? एक आवाज़ आती है। मैं चौंक गई। आवाज़ से नहीं बल्कि उस आवाज़ ने जो कहा उससे। 'आ' से आम वाली? दूसरी आवाज़ भी चौंकाने वाली ही थी। इन दोनों आवाज़ों से भाषा की कक्षा का चरित्र स्पष्टत: नज़र आ रहा था। यानी भाषा की कक्षा में हिंदी भाषा के नाम पर वर्णमाला पर ज़ोर दिया जाता है। मैंने कहा, - "रिमझिम निकालिए।" मैंने जानबूझकर ऐसा कहा ताकि वे अपनी किताब के नाम से तो वाकिफ़ हो जाएँ। कक्षा एक की 'रिमझिम' में कक्षा के दृश्य पर जी भर कर बातचीत करने के बाद मैंने बच्चों से पूछा, "अच्छा बताओ हमारी कक्षा में क्या –क्या है?" बच्चे एक – एक करके चीज़ों के नाम गिनाने लगे और मैं उन्हें बोर्ड पर लिखने लगी। फ़िर कक्षा के बच्चों के नामों को बोलने और लिखने का सिलसिला शुरू हुआ – कविता कशिश, (एक और कशिश , क्योंकि कक्षा में दो बच्चों का नाम कशिश था),

कावेरी, पलक, काजल, इकरा .....। फ़िर और दूसरी चीज़ों के नाम शुरू हो गए –कबूतर, काजल (यह आँखों में लगाने वाला काजल था।), कटोरी, कार, केला, कौवा .....। मैंने उनसे शब्दों को अपनी कॉपी में लिखने और 'क' पर घेरा लगाने के लिए कहा। लक्षिता ने सारे शब्द लिखे लेकिन 'कबूतर' की जगह लिखा 'क'। मैंने उससे कहा कि लक्षिता आपने 'कबूतर' नहीं लिखा। लक्षिता मुझे 'क' की ओर इशारा करते हुए बताने लगी कि ''लिखा है तो ये। फ़िर मैंने उसे आगे समझाया लेकिन यह तो 'क' लिखा है।'' लक्षिता ने 'क' पर अँगुली रखी और ज़ोर देकर कहा, " नहीं , ये 'क' कबूतर लिखा तो है ! देखो तो।" ऐसा लगा कि लक्षिता ने मेरी शिक्षाशास्त्रीय समझ को अच्छे से धो डाला ! पर इसका भी अलग ही आनंद है जब पहली कक्षा के (वास्तव में हर कक्षा के) बच्चे आपकी शिक्षाशास्त्रीय समझ को चुनौती देते हैं। दरअसल 'आ' से अनार /आम वाली किताब कहने में भारी नज़र आता है। पहला खतरा तो यह कि बच्चे इस भ्रम को 'पाल लेंगे' कि 'क' से केवल 'कबूतर' ही होता है, काजल, कार, कविता, केला नहीं। बच्चे के लिए 'क' की आकृति 'कबूतर ' का अर्थ देती है, 'क' से बनने वाले बाकी शब्दों का क्या होगा? एक अन्य खतरा यह भी है कि बच्चे भाषा की कक्षा में निरर्थक कवायद कर रहे हैं, क्योंकि 'अ/ आ/ क /प /च' आदि का कोई अर्थ नहीं है। ये वर्ण बच्चों को न तो कोई अर्थ ही दे पाते हैं और न ही सीखने का आनंद।

खतरा यह भी है कि बच्चे वर्णमाला की दुनिया में उलझकर सार्थक तरीके से न तो पढ़ना–लिखना सीख पाएँगे और न ही भाषा सीखने की उनकी जन्मजात क्षमता का लाभ उठाते हुए उनकी भाषा को समृद्ध से समृद्धतर बनाया जा सकता है। हम केवल वर्णमाला पर ज़ोर देकर प्राथमिक स्तर पर, विशेषत: कक्षा एक और दो में भाषा सीखने –सिखाने के उदेश्यों से भटक जाएँगे। इस स्तर पर भाषा सीखने –सिखाने का उदेश्य है - 'बच्चों में अपने अनुभव और विचार बताने की इच्छा और उत्सुकता जगाना, बच्चों में दूसरों की बात सुनने में रुचि और धैर्य पैदा करना, उनसे सुनी बात पर टिप्पणी दे पाना, सुनी- पढ़ी कहानियों और कविताओं से अपने अनुभव-संसार को जोड़ पाना

Prathmik Shikshak Jan 2015.indd 14 28-12-2015 AM 11:56:45

और उसके बारे में बात करना , चित्रकारी को स्वयं की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना ' आदि। (प्रारंभिक स्तर की कक्षाओं का पाठ्यक्रम , एन.सी.ई.आर.टी., 2006: 13 -14) यदि इन उदेश्यों को गौर से देखें तो यह स्पष्ट होता है कि इनमें भाषा –प्रयोग पर विशेष बल दिया गया है , मात्रा वर्णमाला सिखाने पर नहीं! गहराई से विश्लेषण करने पर और अधिक खतरे नज़र आएँगे। यह आप सोचिए !

पहली कक्षा के ये अलग –अलग परिदृश्य हमें ताकीद करते हैं कि बच्चों के जीवन को सँवारने के फ़ेर में कहीं हम उसे उलझा तो नहीं रहे। उनकी मासूम और सरल दुनिया में शिक्षा के नाम पर किताबों और परीक्षाओं का बोझ तो नहीं बढ़ा रहे। बच्चों को समझना , उनके मन को समझना , उनकी दुनिया को समझना एक शिक्षक के लिए बेहद ज़रूरी है। और वास्तव में हम कर क्या रहे हैं ..... ?

❑❑❑

Prathmik Shikshak Jan 2015.indd 15 28-12-2015 AM 11:56:45